अक्टूबर, 2015 ▪ मूल्य : 30 रुपए

# वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

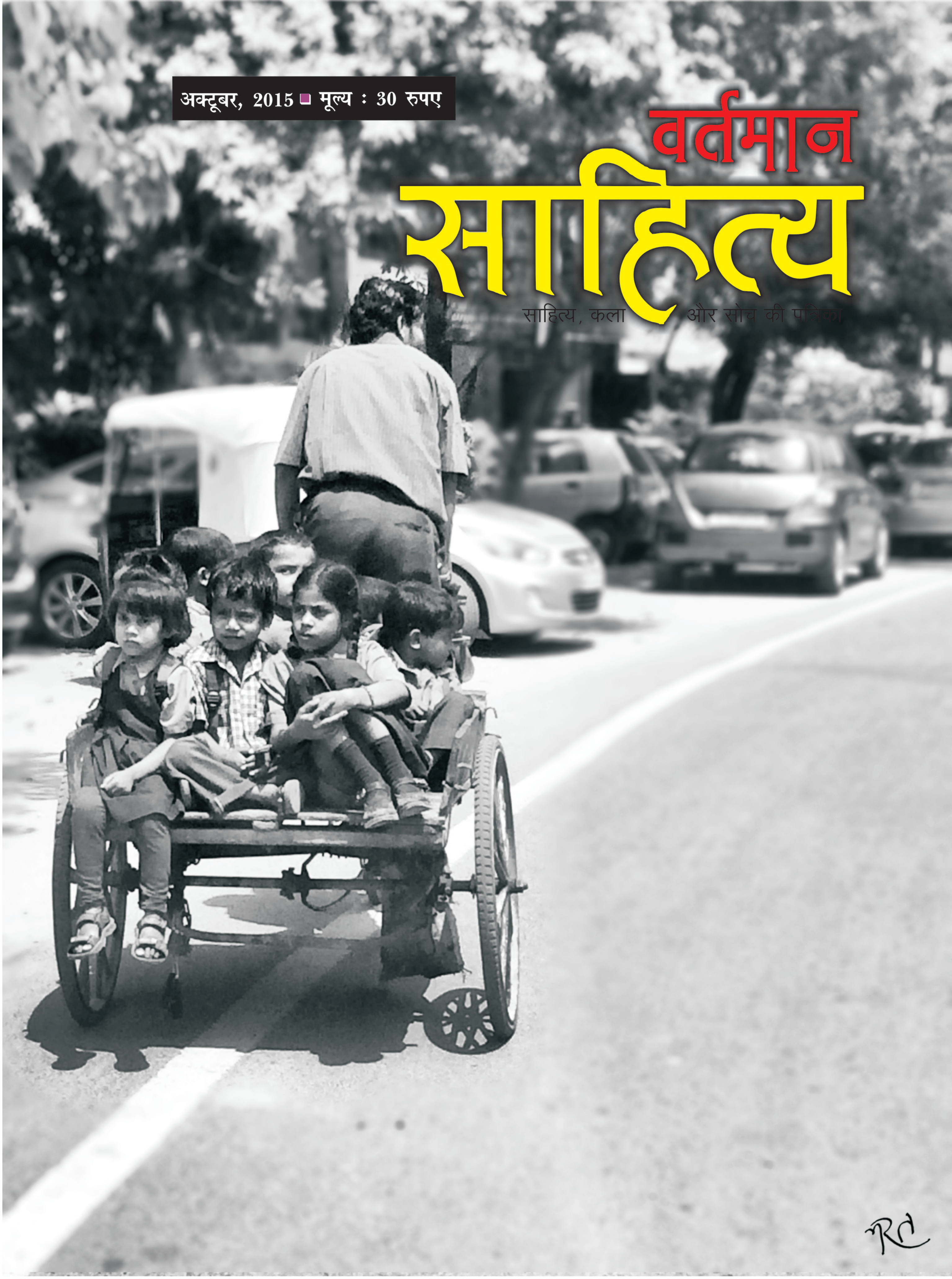

# वर्तमान साहित्य

साहित्य, कला और सोच की पत्रिका

**वर्ष 32 ❑ अंक 10 ❑ अक्टूबर, 2015**

सलाहकार संपादक
रवीन्द्र कालिया

संपादक
विभूति नारायण राय

कार्यकारी संपादक
भारत भारद्वाज

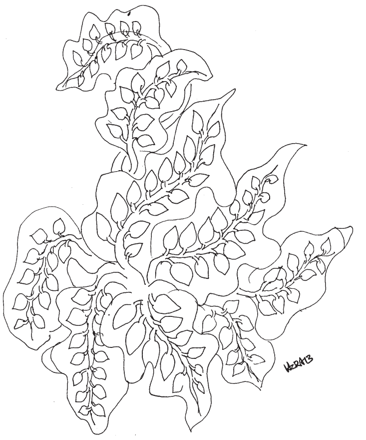

**वर्ष 32 ❑ अंक 10 ❑ अक्टूबर, 2015**
**RNI पंजीकरण संख्या 40342/83**
**डाक पंजीयन संख्या ए.एल.जी./63, 2013-2015**

**संपादकीय कार्यालय :**
टी/101, आम्रपाली सिलिकॉन सिटी, सेक्टर-76,
नोएडा-201306 मो. 09643890121

**E-mail** : vartmansahitya.patrika@gmail.com
**Website** : vartmansahitya.com

**कला-पक्ष :** भरत तिवारी, बी-67, एसएफएस/शेखसराय-I,
नई दिल्ली-110017

**आवरण :** भरत तिवारी

**सहयोग राशि** : एक प्रति मूल्य : 30/-; ❑ वार्षिक : 350/-;
❑ संस्थाओं व लाइब्रेरियों के लिए 500/- ❑ आजीवन : 11000/-
❑ **विदेशों में वार्षिक** : 70 डॉलर।

**बैंक के माध्यम से सदस्यता शुल्क भेजने के लिए**
**वर्तमान साहित्य**
**चालू खाता संख्या** : 85141010001260
IFSC : SYNB0008514,
**सिंडिकेट बैंक, रामघाट रोड, अलीगढ़-202002**

**कृपया राशि भेजने की सूचना तत्काल ईमेल, एसएमएस अथवा पत्र द्वारा भेजें।**

सदस्यता से सम्बन्धित सारे भुगतान मनीऑर्डर/ड्राफ़्ट/चैक/बैंक के माध्यम से **वर्तमान साहित्य** के नाम से संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजे जाएँ। मनीऑर्डर भेजने के साथ ही पत्र द्वारा अपना पूरा पता फोन नं. सहित सूचित करें।

प्रकाशक, मुद्रक, संपादक विभूति नारायण राय की ओर से, रुचिका प्रिंटर्स, दिल्ली-110032 (9212796256) द्वारा मुद्रित तथा 28, एम.आई.जी., अवन्तिका-I, रामघाट रोड, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित।

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से **वर्तमान साहित्य**, संपादक मंडल या संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। संपादन एवं संचालन पूर्णतया अवैतनिक और अव्यावसायिक।

# अंदर की बात

**संपादकीय**
कबिरा हम सबकी कहैं / *विभूति नारायण राय* 3

**आलेख**
**मुस्लिम नवजागरण के अग्रदूत क्यों नहीं हो सकते मौलवी अब्दुल हफ़ीज मोहम्मद बरकतुल्ला**
/ *प्रदीप सक्सेना* 5
**महावीर प्रसाद द्विवेदी का अर्थशास्त्रीय चिंतन**
/ *भारत यायावर* 12

**धारावाहिक उपन्यास-5**
**कल्चर वल्चर** / *ममता कालिया* 18

**बहस-तलब**
**स्वराज्य क्या है?**
/ *श्रीयुत भाई परमानंद, एम.एम.एम.एल.ए.* 27
**भाई परमानंद और स्वराज्य** / पंडित जवाहरलाल नेहरू 29

**कविताएं**
**अशोक पाण्डे** *31*
**सुरेश सेन निशान्त** *35*
**फीरोज़ शानी** *40*

**कहानी**
**चिल मार** / *जया जादवानी* 42
**भीड़** / एस. अहमद 48
**उजाले की सुरंग** / जीवन सिंह ठाकुर 52

**पुस्तक चर्चा**
**'अरविंद सहज समांतर कोश' के बहाने**
/ *डॉ. योगेन्द्र नाथ मिश्र* 56

**समीक्षा**
**कवि महेंद्र भटनागर का चाँद** / *खगेंद्र ठाकुर* 61
**सुबह होगी** / अणिमा खरे 63

**मीडिया**
**मीडिया का हालिया तकनीकी नियतिवाद** / *प्रांजल धर* 67

**रपट**
**राग भोपाली : देख तमाशा हिंदी का** / *त्रिकालदर्शी* 71

**स्तम्भ**
**रचना संसार** / *सूरज प्रकाश* 74
**तेरी मेरी सबकी बात** / *नमिता सिंह* 77

**सम्मति :** इधर-उधर से प्राप्त प्रतिक्रियाएं 80

संपादकीय

# कबिरा हम सबकी कहैं

विवेक और तर्क का निषेध भारतीय परम्परा के अंग रहे हैं। इसमें आस्था को हमेशा प्रश्नाकुलता पर तरजीह दी गयी है। ऐसा नहीं है कि हमारी मेधा ने स्थापित मान्यताओं को कभी चुनौती दी ही नहीं पर यह चुनौती हमेशा अल्पजीवी और कमजोर रही है। ईसा से छह सौ साल पहले गौतम बुद्ध ने कर्मकांड, पुनर्जन्म और असमानता पर आधारित वर्ण व्यवस्था का इतना जबरदस्त विरोध किया कि ब्राह्मणवाद की चूलें हिल गयीं पर कुछ शताब्दियों में ही सनातन धर्म दोहरे उछाल के साथ वापस आ गया। यही हश्र चार्वाकों का हुआ। उनके दो चार श्लोकों को छोड़ कर शेष सब नष्ट कर दिए गए। इन श्लोकों को पढ़ कर लगता है कि वेद विरोधी, भौतिकवादी चार्वाक सिर्फ भोग–विलासी हैं और ऋण लेकर भी घी पीने जैसे मूल्यों में विश्वास करते हैं। मध्य युग में भक्ति आन्दोलन नें विवेक के पक्ष में अलख जगाई और तुलसी तथा सूर जैसे सवर्ण कवियों को छोड़ दें तो शेष सभी पिछड़े और दलित कवियों ने कर्मकांड और जाति प्रथा का जम कर विरोध किया। उन्हें इस अर्थ में तो सफलता मिली कि उन्होंने संस्कृत के स्थान पर लोकभाषाओं को प्रतिष्ठित किया पर आस्था से वे भी हार गए। वे ईश्वर को नहीं छोड़ पाये और कहीं भी ईश्वर का कारोबार बिना आस्था के नहीं चलता। यह दूसरी परम्परा थी जो गौतम बुद्ध, चार्वाकों और कबीर से होती हुई फुले और अम्बेडकर तक पहुँची है। ऐसा नहीं है कि इस परम्परा को बलात् नष्ट करने की कोशिशें कम हुई हैं। पूरा भारतीय इतिहास इस सन्दर्भ में रक्तरंजित है।

उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध से इस हिंसा में कमी आनी शुरू हुई थी क्योंकि अविवेकी वर्ण व्यवस्था को बचाने में औपनिवेशिक भारतीय राज्य की कोई दिलचस्पी नहीं थी। वर्ण व्यवस्था के पक्ष में विवेक की कसौटी पर टिक सकने वाला कोई तर्क नहीं दिया जा सकता। इस समय तक औद्योगिक क्रान्ति और रेनेसां की प्रक्रिया से गुजरे पश्चिम ने दर्शन की सारी स्थापित मान्यताओं में जबर्दस्त उथलपुथल मचा दी थी और धर्म, ईश्वर, परिवार तथा राज्य जैसी संस्थाओं की बुनियाद को हिला देने वाली बहसें शुरू हो गयी थीं। स्वाभाविक था कि भारतीय समाज भी इनसे बच नहीं सकता था और विवेक का पहला आघात वर्ण व्यवस्था को ही झेलना पड़ा। ऐसे राज्य के अभाव ने, जो जन्माधारित श्रेष्ठता को चुनौती देने पर शम्बूक या एकलव्य को दंडित कर सकता था, वर्ण व्यवस्था के समर्थकों की स्थिति बड़ी दयनीय कर दी। वे तर्क से जीत नहीं सकते थे अत: उन्होंने सबसे आसान रास्ता अपनाया : संवाद का ही निषेध करना शुरू कर दिया। कभी मुसलमानों और ईसाइयों को म्लेच्छ कह कर उनसे संवाद से बचा गया तो कभी विदेश यात्राओं को प्रतिबंधित करने की कोशिश की गयी। कारण एक ही था कि आप किसी भी पढ़े–लिखे व्यक्ति को अगर यह कहें की आप इसलिए श्रेष्ठ हैं कि आप एक ब्राह्मण माँ–बाप की संतान हैं तो वह सिवाय ठठाकर हँसने के और कुछ नहीं करेगा। यूरोप में तो यह भी सम्भावना थी कि किसी ऐसे दावेदार को पागलखाने या चिड़ियाघर भेज दिया जाता, इसलिए सबसे सुविधाजनक था कि समुद्र पार करने को ही निरुत्साहित किया जाय। पर तेजी से परिवर्तित हो रही वैश्विक परिस्थितियों में यह अधिक दिनों तक चल नहीं सकता था और ठस ब्राह्मण परम्परा को भी विवेक और तर्क के लिए जगह छोड़नी पड़ी। यह शायद राज्य के समर्थन का अभाव ही था कि धीमी

ही सही पर अनुभव की जा सकने वाली गति से परिवर्तन होते गये और भारतीय समाज ऊपर से जितना आस्थावान दिखे अंदर से विवेक को मान्यता देने लगा है। हिन्दू कोड बिल इसका एक उदाहरण हो सकता है : पचास के दशक में जो हिन्दू समाज अपनी स्त्रियों को पैत्रिक सम्पत्ति में हिस्सा देने को तैयार नहीं था, आज न सिर्फ कानून में परिवर्तन कर उन्हें यह अधिकार देने के लिए तैयार हो गया है बल्कि अविवाहित मातृत्व और लिव-इन-रिलेशनशिप जैसे सम्बन्धों की मान्यता के लिए भी धीरे-धीरे राज़ी हो रहा है।

विवेक को प्रतिष्ठित करने वाले परिवर्तन शांतिपूर्ण और क्रमिक विकास की प्रक्रिया के तहत हों इसके लिए जरूरी है कि राज्य उसे प्रोत्साहित करे और उन्हें रोकने के लिए बल प्रयोग न करे। शम्बूक वध और एकलव्य का अंगूठा काटना दो ऐसे उदाहरण हैं जो सिद्ध कर सकते हैं कि राज्य का विपरीत हस्तक्षेप किस तरह से हाशिये के समुदायों की शिक्षा और कौशल विकास की इच्छाओं का सैकड़ों वर्षों के लिए गला घोट सकता है। कल्पना करें कि महाड़ जल सत्याग्रह के दौरान अम्बेडकर के सामने त्रेता या द्वापर का भारतीय राज्य होता तो इस सत्याग्रह के बाद उनके साथ क्या सलूक होता इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

मैं राज्य की भूमिका का उल्लेख सिर्फ उस खतरे को रेखांकित करने के लिए कर रहा हूँ जो आज का भारतीय राज्य विवेक के समक्ष पेश करने की कोशिश कर रहा है। कुछ उदाहरण देखें : एक अस्पताल के उद्घाटन के दौरान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा कि गणेश के कटे सर के स्थान पर हाथी का सर लगाना किसी प्लास्टिक सर्जन का ही काम हो सकता है, हाल में रक्षा मंत्री ने रक्षा वैज्ञानिकों के सामने भाषण दिया कि उन्हें महर्षि दधीचि के ज्ञान पर शोध करना चाहिये कि कैसे उन्होंने अपने हड्डियों को वज्र बनाया था, भोपाल के अटल बिहारी बाजपेई हिंदी विश्वविद्यालय ने एक कार्यक्रम शुरू किया है जिसमे गर्भवती महिलाओं को नैतिक कथायें सुनायी जाती हैं जिससे उनके गर्भस्थ शिशु अभिमन्यु की तरह माँ के पेट में दुनिया भर का ज्ञान हासिल कर सकें। मौजूदा सरकार शिक्षा के क्षेत्र में आमूल चूल परिवर्तन कर रही है जिसके तहत पाठ्य सामग्री में भी बड़े बदलाव लाये जायेंगे। तैयार रहें कि आपके बच्चे अपनी किताबों में पढ़ें कि सूर्य और चन्द्र ग्रहण राहू-केतु की दुष्टता के कारण लगते हैं और वर्ण व्यवस्था दैवीय विधान है जिसके तहत ब्रह्मा ने अपने मुख से ब्राह्मणों और पैर से शूद्रों को जन्म दिया था। आखिर राज्य ने भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद का नेतृत्व एक ऐसे व्यक्ति को सौंप दिया है जिसके जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य ही महाभारत का काल निर्धारण है। मिथ और इतिहास में फर्क न करने वाला राज्य हमेशा आस्था को विवेक पर तरजीह देगा।

विवेक निषेध के झटके भारतीय समाज को लगने लगे हैं। हाल ही में हुई एम. एम. कलबुर्गी की हत्या विवेक और तर्क की हत्या है। उनके पहले कामरेड पंसारे और दाभोलकर की हत्यायें हुईं। इन तीनों हत्यायों के पीछे कोई व्यक्तिगत दुश्मनी नहीं थी। तीनों जादू-टोने, कर्मकांड और वर्णव्यवस्था का विरोध कर रहे थे, तीनों प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी और एक्टिविस्ट थे और तीनों को ही पिछले दिनों धमकियां मिली थीं। राज्य ने उनकी सुरक्षा का कोई समुचित इंतजाम नहीं किया। यह भी कह सकते हैं कि राज्य के आचरण से हत्यारों का हौसला बढ़ा ही होगा। यह एक बड़ा खतरा है और हमें आने वाले दिनों में ऐसी तमाम घटनाओं के लिए तैयार रहना होगा।

इस अंक में हम सन् 1935 की एक बहस दे रहे हैं जो हिन्दू महासभाई भाई परमानंद और जवाहर लाल नेहरू के बीच मासिक 'सरस्वती' में हुई थी। यह देखना बड़ा प्रासंगिक होगा कि तब भी हिंदुत्ववादी देश को एक हिन्दू राष्ट्र बनाना चाहते थे और नेहरू जैसे लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष धारा के प्रतिनिधि मजबूती से उसका मुकाबला कर रहे थे। यह बहस कमोबेश आज की लगती है। यह भी समझ में आता है कि कैसे जिन्ना को दो राष्ट्रों के सिद्धांत के रास्ते पर जाने में हिंदुत्ववादियों ने भी मदद की थी।

भोपाल में हाल में ही दसवां विश्व हिंदी सम्मेलन सम्पन्न हुआ। कैसे भाषा संस्कृति विरोधियों के चंगुल में फंस कर छटपटाती है इसे समझने के लिए भोपाल के इस सम्मेलन का उल्लेख किया जाना चाहिए। गनीमत है कि गिरावट के इस दौर में भी ज्यादातर लेखक इससे दूर रहे। एक भूतपूर्व सम्पादक, जिनकी हालिया पिटाई को लेकर हिन्दी समाज में कुछ चुहलबाजी हुई थी, गये जरूर पर मुंह लटकाए घूमते रहे। उन्हें न खुदा ही मिला न विसाले सनम। ले दे कर मुख्य धारा की एक लेखिका जरूर दिखीं पर उन्हें माफ़ किया जा सकता है : वे तो हर सरकार में आयोजन समितियों में घुस जाती हैं। इस अंक में पेश है विश्व हिन्दी सम्मेलन की एक रपट।

विभूति नारायण राय

(विभूति नारायण राय)